औपनिवेशिक काल में भू–राजस्व व्यवस्थाः 1857 के दौरान किसानों में अंसन्तोष

विनोद कुमार
शोधछात्र, इतिहास विभाग
कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र

1857 की विद्रोह भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय है। सन् 1757–1857 तक अंग्रेजों द्वारा ऐसी नीतियों का निर्माण किया गया जिससे भारतीयों का शोषण किया गया इससे प्रत्येक भारतीय के मन में आक्रोश उत्पन्न हुआ जिनमें से कृषक वर्ग एक भी था कम्पनी द्वारा लगातार अधिक राजस्व के लालच के कारण यहां पर लगातार अनेक भू–राजस्व बन्दोबस्त व नीतियां बनाई गई, इन सब बन्दोबस्त और नीतियों का उद्देश्य केवल कम्पनी के खजाने को भरना था इन्हीं नीतियों के कारण यहां पर बड़े–बड़े जमीदारों को अपनी जमीनों से हाथ धोना पड़ा, साथ–साथ अपने पैतृक अधिकारों का भी त्याग करना पड़ा, इसके साथ–साथ छोटे व गरीब किसान जो कम जमीन पर खेती करते थे उन्हें भी राजस्व अदा न करने के कारण अपनी जमीनों को बेचना पड़ा, जिस कारण ये कृषि करने से वंचित हो गए। जिसका असर हमें सन् 1857 के विद्रोह में देखने को मिलता है जब सम्पूर्ण रूप से इस वर्ग की भागेदारी होती है।

प्रस्तावना

1857 की विद्रोह का भारतीय इतिहास में अपना अलग महत्व है। अंग्रेजों ने सन् 1757 ई. में प्लासी की लड़ाई व 1764 में बक्सर के युद्ध के बाद व्यापार के साथ–साथ यहॉ पर अपनी राजनीतिक सत्ता का विस्तार करना भी आरम्भ कर दिया था। इस आसाधारण घटनाक्रम के तीन चरण थे, पहले चरण में कम्पनी केवल व्यापारी थे दूसरे चरण में पूरे व्यापार पर नियन्त्रण प्राप्त करने के कारण यूरोपियन प्रतिद्धदिंयों से संघर्ष हुआ इससे उन्हें भारत में व्यापार पर अधिकार के साथ–साथ राजनीतिक प्रभाव भी प्राप्त किया। तीसरे चरण में यहॉ की राजनीतिक अव्यवस्था का लाभ उठाकर यहॉ पर अधिकार किया। जिसका आरम्भ हमें प्लासी की लड़ाई में देखने को मिलता है।[1] भारत में अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए अंग्रेजो ने राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक स्तर पर अनेक प्रकार की नीतियॉ बनाई जिनके आधार पर भारतीयों के हर पक्ष का शोषण किया जिसके कारण भारत के जनसाधारण वर्ग व शासक वर्ग में अंग्रेजों के प्रति आक्रोश का पैदा हुआ। जिसने की यहॉ पर 1857 जैसी घटना को जन्म दिया। कम्पनी का शुरूआत से ही उद्देश्य यहॉ पर शोषण करना मुख्य रहा था जिसके कारण उन्होंने यहां पर कृषि और भू–राजस्व से सम्बन्धित ऐसी नीतियां अपनाई

जिससे आम किसानों का विनाश तो हुआ साथ–साथ बड़े–बड़े जमीदारों व तालुकदारों को भी अपनी जमीन से हाथ धोना पड़ा। जिसके कारण ये सीधे तौर पर अग्रेजों के विरूद्ध हो गए। इस बारे में के और मेलसन बताते है कि ''उस युग की नीति यह थी कि राजा और किसान के बीच किसी को आने न दिया जाए''[2] लेकिन इस वर्ग का खात्मा आर्थिक रूप से बड़े राज्यों को खत्म करने की नीति का ही परिणाम था। कम्पनी ने भूमि व्यवस्था का जो तरीका चलाया, उसका भी नतीजा वही हुआ। इस्तमरारी बन्दोवस्त के क्षेत्र में नए जमीदारों ने पुराने परिवारों का स्थान ले लिया।[3] ''रैयतवाडी क्षेत्रों में जमीदार लगभग लुप्त हो गये व मराठा युद्धों के बाद जो इलाका बिट्रिश साम्राज्य में मिला लिया गया था व जो इलाके अवध के नवाब द्वारा सौंपे गए थे। उनमें बहुत से योग्य अग्रेज अफसर विशेषकर उत्तर भारत के अग्रेज भले आदमियों को बिलकुल भी बर्दाशत नहीं कर पाते थे''[4] उदाहरण स्वरूप उत्तर के प्रान्तों में भू–संपति वाले तीन वर्ग थे जमींदार, ताल्लुकेदार, माफीदार इनके साथ शुरू में जो बन्दोबस्त किया गया था वो किसी नियम या सिद्धांत पर आधारित नहीं था फिर भी यह मान लिया गया कि राज्य के हाथ में भूमि का कुल अधिकार है। सन् 1822 में कुल लगान का 5/6 मालगुजारी निधरित की गई थी व 1833ई0 में इसे घटाकर लगान का 2/3 भाग कर दिया गया। उत्तर पश्चिमी प्रान्त. के लै गर्वनर टी.सी. रावर्टसन के अनुसार 1833–42 के बन्दोबस्त का ''उद्देश्य सबको बराबरी में लाना था जिससे किसानों के उपर कोई वर्ग न रह जाये देशी लोगों के एक वर्ग की मध्यस्ता के बिना सीधे शासन की कोशिश बहुत ही भयावह प्रयोग है, फिर भी हमारा जो तरीका चालू है उसका परिणाम यही जान पड़ता है''[5]। सन् 1855 में सहारनपुर नियमों के अनुसार मालगुजारी की दर 50 प्रतिशत कर दी गयी। यह दर अवध मध्यप्रदेश, पंजाब और बाद को मद्रास और बम्बई में लागू की गई। भारी मालगुजारी की वसुली में बड़ी कडाई की गई के अनुसार ''हमारी प्रवर्तित पद्धति के कारण जो लोग बहुत बड़े इलाकों के मालिक थे उनके पास कच्ची झोपड़ियां और पकाने खाने के कुछ बर्तनों के अलावा और कुछ न बचा''[6] जहॉ तक अवध के तालुकदारों का सम्बन्ध था उन्हें अवश्य जमींदारी के कुछ अधिकार प्राप्त थे। सन् 1856 में अवध की नवावी 'जोन विलयम के' हरण के समय अवध का दो–तिहाई भाग उन्हीं के कब्जे में था पर बिट्रिश सरकार इन्हें केवल मालगुजारी वसुल करने में नियुक्त बिचो लिया समझती थी।[7] होम्स के अनुसार प्रसिद्ध राबर्ट मेटिन्स बर्ड द्वारा प्रेरित होकर बन्दोबस्त अधिकारी इस विचार से काम कर रहे थे कि हम सबसे अधिक संख्या को सबसे अधिक लाभ देने की चेष्टा कर रहे हैं उन्होंने तालुकदारों को निकम्मा और बेकार करार दिया और इस बात पर तुल गए कि उनके पास एक ऐसी जमीन न रहने पाए जिसे पर वे

अपने अधिकार का ऐसा सबूत न दे सके जो एक अंग्रेज वकील को सन्तुष्ट कर सके।[8]

जोन विलयम ने लिखा– ''बन्दोबस्त के तूफान ने बचे–कुचे जमींदारों को उखाड़ दिया और एक किसान वर्ग जमीन का वैध उत्तराधिकारी माना गया''[9] उदाहरण स्वरूप 577 गांवों के मालिक और सरकार को सलाना 20,000 पौंड राजस्व देने वाले महाराजा मानसिंह के सिवा 6 गांवों के सब कुछ छीन लिया गया। अब उनकी मालगुजारी 20,000 पौंड़ से 3,000 पौंड़ हो गई। एक ताल्लुकेदार ने इसी प्रकार 378 गांवों में से 266 खो दिए और एक अन्य जमींदार ने 204 में से 155 गांव खो दिए।[10] दूसरी कारवाई जिससे इस वर्ग को हानि हुई वह भी मांफी जमीनों की बेदखली, इनमें से अधिकांश ऐसे लोगों से उत्तराधिकार में प्राप्त हुई थी।

जिन्होंने राज्य की कोई विशेष सेवा की थी और कुछ लोगों ने मुगल सम्राज्य के पतन के समय गलत तरीके से जमीन पर कब्जा ले लिया था इसलिए कम्पनी ने हुक्म दिया कि भूमि कि पूरी जाँच की जाए और ये जाँच किस प्रकार होगी इसका वर्णन 'के' करता है! '' इस प्रकार पुनग्रहण अधिकारी को खुला छोड़ दिया गया। लोगों से कहा गया कि अपने अधिकार के कागजात दिखाओं जिससे हमें संतोष हो इतने दिनों तक शन्ति से सम्पति भोगने के बाद सम्पति का प्रमाण मांगना जबदस्ती थी जबकि एक मात्र प्रमाण जमीन पर कब्जा ही था। इससे आंतंक हर गया जो कुछ हुआ उसे यदि पूरी जब्ती का नाम दिया जाए तो गलत नहीं होगा।[11]

जमीनदारों के साथ–साथ छोटे–2 किसान भी सरकार की भू–राजस्व सम्बन्धित नीतियों से खुश नहीं थे महान विद्रोह की घटनाओं के सरकारी विवरण में यह आता है ''गंगापार के परगनों में उपद्रव भिन्न कारणों से हुए वहां धर्म का या तो कुछ हाथ नहीं था या बहुत हाथ था। कम्पनी के अधीन आने के समय यहॉ बड़े–बड़े ठाकुर परिवारों की त्ताल्लुकदारियां भी पुराने जमींदार स्हभाव से शाहखर्च थे क्योंकि वे लूटमार पर जीते थे इसी कारण वो बर्बाद हो चुके था परन्तु किसान वर्ग अब भी उनकी उन लोगों से ज्यादा इज्जत करते थे जिन्होंने नीलामी में उनकी जमीदारियां खरीदी थी और अब जमींदार बन बैठे थे अब भी गांव के सबसे प्रभावशाली लोग भूतपूर्व जमींदार और उनके परिवार के लोग थे, अधिकांश क्षेत्रों में गरीब किसानों से उन्हें एक कर सा मिलता था और वे इसके बदले उनकी सहायता करते थे''[12] रैयतवाड़ी क्षेत्रों में खेती की हालत इतनी बुरी थी कि 1824–25 में प्रिगल ने कुल उपज का 55 प्रतिशत सरकारी मालगुजारी के रूप में निर्धारित किया गया। परिणाम यह हुआ कि किसान अपनी जमीन छोड़कर भाग खड़ा हुआ और बड़े–2 इलाकों में खेती बन्द हो गई। 1835 में इस गलती का आंशिक रूप में सुधार किया गया। फिर भी 1852 की बिट्रिश

पार्लियामेंट की समिति के सम्मुख सर जार्ज क्लार्क की गवाही के अनुसार रैयतवाड़ी क्षेत्रों में किसानों का हालत बिलकुल भिखमंगो की जैसी थी[13] 1817 और 1835 के बीच मालगुजारी लगभग दुगनी 8,68000 पौंड़ से 15, 35000 पौंड हो गई थी। मद्रास प्रेसीड्रेन्सी में भी स्थिति इससे अच्छी नहीं थी 1820 में रैयतवाडी बन्दोबस्त का कार्य शुरू हुआ था और 1827 में यह पूरा हो गया। रमेशदत्त के शब्दों में परिणाम यह हुआ– ''30 साल तक मद्रास प्रान्त में ऐसा अत्याचार मचा और खेती में ऐसा संकट आ गया जो उस समय भी भारत में अद्वितीय था''[14] बाद के भूमि बन्दोबस्त में कोई स्थिति में बड़ा सुधार नहीं हुआ। 1852–53 में किसान बड़ी मुशकिल से गुजारा कर रहा था और सूदखोर चोट्टियों के स्थायी कर्जदार बन गये थे यद्यपि बम्बई और मद्रास में विद्रोह उस तरह से नहीं हुआ जैसा उत्तर भारत में देखने को मिला तो इसका कारण यह नहीं था कि रैयतवाडी बन्दोबस्त के कारण उनके परम्परागत मुखिया के मिरासदार और मद्रास के पोलिगार और जमींदार उनका नेतृत्व करने को बचे भी नहीं थे मध्य प्रान्त के कुछ हिस्से 1810 में मराठा राज्य के पतन के बाद अंग्रेजों के पक्षों में आए यहॉ फौरन बन्दोबस्त का कार्य आरम्भ किया गया और इसमें मालगुजारी काफी ऊँची रखी गई व भरने की अवधि कम रखी गई ऊंचे लगानों को सख्ती के साथ वसूला गया नतीजा यह हुआ कि रकम की वसूली असम्भव हो गई, लोगों से साथ मारपीट, निष्ट्रता, सम्पति धीनना इलाके के उजड़ने और कुशासन की शिकायतें आम थी।

अन्त में निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि जिन लोगों की जमीने छिनी उनमें से बहुत से उलेमा थे जिन्हें शिक्षा व धार्मिक कार्य करने के लिए गुजारे के लिए जमीन दी गई थी। इस प्रकार अधिकार और जीविका के साधन छिन जाने पर उनमें बहुत आक्रोश पैदा हुआ और वे सरकार के शत्रु हो गए । यह तो सर्व विदित है कि मौलवियों ने लोगों को बिट्रिश सरकार के विरूद्ध विद्रोह करने को भडकाने में प्रमुख रूप से भाग लिया। इसके अलावा छोटे जमींदारों की संख्या भी बहुत अधिक थी इसमें राजपूत, ब्राह्मण, जाट, गुर्जर आदि जातियों के थे इन सब ने मिलकर विद्रोह के समय कम्पनी का पूरा विरोध किया जिसका असर हमें विद्रोह के दौरान देखने को मिलता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. गोतम गुप्ता, 1857 द अपराईजाइिंग, पृ. 1
2. के और मैलसन, हिस्ट्री ऑफ द इण्डियन म्यूटनी भाग–1, पृ. 111
3. तारा चन्द, भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास भाग–2, पृ. 51
4. के और मैलसन, हिस्ट्री ऑफ द इण्डियन म्यूटनी भाग–1, पृ. 112
5. रमेशदत, द इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डियां इन द विक्टोरियन राज, पृ. 42–43
6. के और मैलसन, हिस्ट्री ऑफ द इण्डियन म्यूटनी भाग–1, पृ. 114
7. मॉरल एण्ड मैटीरियल प्रोग्रेस एण्ड कंडीशन ऑफ इण्डिया, 1872–73 पृ. 23
8. टी.आर. होम्स, ए हिस्ट्री ऑफ द इण्डियन म्यूटनी, पृ. 25
9. के और मैलसन, हिस्ट्री ऑफ द इण्डियन म्यूटनी भाग–1, पृ. 114
10. स्टेटमेंट राग्जीबिटिग दि मॉरल एण्ड मैडीरियल प्रोग्रेसएण्ड कनड़ीशन ऑफ इण्डिया, 1872–73, पृ. 23
11. के और मेलसन, पूरोक्त, पृ 123
12. तारा चन्द, भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलन का इतिहास भाग–2, पृ. 54
13. आर.सी.दत्त, इकोनिक हिस्ट्री ऑफ इण्ड़िया इन द क्लोनियल एज, पृ. 59
14. उपरोक्त, पृ. 68